जनतासंपर्क माध्यम तथा भारतीय संगीत

अशोक दामोदर रानडे

(मूल प्रसिद्धी - संगीत कला विहार, संपा. बी. आर. देवधर, अखिल भारतीय गांधर्व महाविद्यालय मंडळ, मिरज, अप्रैल १९७६)

यह बीसवीं सदी संपर्क माध्यमों की सदी के नाते जानी जाती है। इसमें संदेह नहीं कि संपर्क माध्यमों की विविधता, उनका प्रसार तथा उनकी गति के कारण यह नामकरण सार्थक हो गया है। भारत तथा भारतीय संगीत पर भी माध्यमों का प्रभाव पड़ा हुआ है। आज यहां हम यह देखेंगे कि भारतीय संगीतपर माध्यमों का असर किस प्रकार हो गया है।

मैकलुहान जैसे माध्यम-महर्षि ने माध्यमों का विचार करते समय तथा मूल्यांकन करते समय दूरध्वनी, चक्र, कागज आदि चीजों का अंतर्भाव अपने विवेचन मे किया है। परंतु माध्यमों के संदर्भ मे उन्होंने दो संज्ञाओं विशेषणो का उपयोग किया दिखाई देता है। वे हैं संपर्क माध्यम तथा आकलन माध्यम। स्पष्ट है कि आकलन माध्यमों का वर्ग बडा होगा, समावेशक होगा और उनमें संपर्क माध्यमों का भी समावेश होगा। संगीत के संदर्भ में माध्यमों का विचार करते समय माध्यमों का वर्ग आवश्यकतानुसार घटाया बढाया जा सकता है। इस बात को ध्यान मे लेकर संगीतपर प्रत्यक्षतया असर करने वाले माध्यम के नाते आकाशवाणी, दूरचित्रवाणी ध्वनी मुद्रण तथा चित्रपट आदि माध्यमों का विचार हम संक्षेप में करेंगे।

इस माध्यमों के संगीत पर होने वाले परिणाम का विचार भी अनेक ढंगों से किया जा सकता है। संगीत और संगीतकार के आर्थिक और सामाजिक स्थान और महत्त्व को बदल देने वाली उद्योग के नाते हम उनकी ओर देख सकते हैं। हम उनकी ओर इससे भी निराली दृष्टी से देखेंगे। हम देखेंगे कि कलास्वाद, कलानिर्माण तथा तत्सम सौंदर्य शास्त्रीय अंगोपर माध्यमों का क्या असर होता है और वैसा वह क्यों होता है। संगीत निर्माण, उसका प्रयोग, उसका ग्रहण तथा शिक्षा इन चार पहलूओं को हमारे विचारों मे स्थान रहेगा। अखिल सारे वर्गीकरण सुविधा के लिए होनेपर भी संगीत के विचार के लिए उपरोक्त चार श्रेणीयों के वर्ग की कल्पना करने में यह लाभ यह है कि ये चारो प्रकार संगीत से प्रत्यक्ष में संबंद्ध है।

उपरोक्त सभी माध्यमों की अपनी खास विशेषताएं है और उनमें से हर एक का संगीत पर होने वाला परिणाम भी खास रहता है, फिर भी सभी के लिए समान ऐसे भी कुछ परिणाम होते हैं। पहले ऐसे कुछ परीणामों को देखेंगे। एक बात ध्यान में रखनी होगी कि सभी माध्यमों में पाये जाने वाले सामान्य सांगीतिक परिणाम क्यो होते हैं इसका उत्तर खोज के लिए माध्यमों के अन्य विचारों को भी देखना होगा।

सभी माध्यमों ने भारतीय संगीतकार के कलाविषयक ज्ञानपर परिणाम किया है। वाद्यवृंदरचना का न होना और स्वर संहती को प्रणालि से (एक समय एकही स्वर) संगीताविष्कार का प्रभावित रहना इन बातों के कारण भारतीय संगीत में कलातत्त्वो को एक निराला स्थान तथा महत्त्व प्राप्त हुआ हैं। हमारे संगीताविष्कार पर अनुक्रमी काल अथवा 'घडी' के काल का बंधन न होनेसे हम विस्तार को भी बंधन में नही बांधते। माध्यमों के आगमन के पश्चात् तथा उनके प्रमाव के कारण हमारे आविष्कार का कालिक एकक (युनिट) अधिकाधिक निश्चित होता जा रहा है। पुराने जमाने की तरह अब हम व्यावहारिक तथा सांगीतिक - इस प्रकार दोनों स्तरोंपर काल तत्त्व को नियंत्रित नहीं करते। संगीतकार का ध्यान उस व्यावहारिक काल ही पर केंद्रित होने लगा है जिसपर उसका नियंत्रण नहीं रहता। ध्वनिमुद्रण के जो प्रचलित कालिक एकक होते हैं (जैसे :- ३ १/२ मिनट, ७ मिनट वगैरह) उनमें और संगीताविष्कार में कोई मूलभूत नाता नहीं होता इस बात को हर एक संगीतकार अनुभव करता है। फिर भी ये कालिक एकक संगीताविष्कार के एककपर सवार हो चुके हैं।

इस सवारी से संगीत निर्माणपर भी परिणाम हुआ है। अब ऐसा नहीं दिखायी देता कि सांगीतिक आकृतिबंध आराम से बनाये जा रहे हों। तत्कालीन स्फूर्ति को संगीत निर्माण की आजकल कम गुंजाईश होती है। अब कलाविष्कार में एक तरह की व्यापार प्रवृत्ति दिखायी देने लगी हैं कि जानबूझकर स्वराघात अथवा लयाघात के द्वारा अधिक स्थूल प्रयोग करके अपने प्रयत्नों को ठोस रूप में प्रस्तुत करनेपर भी काम चलेगा। संक्षेप में संगीतरचना के विभागों को स्थूलाकार में प्रस्तुत करने में प्रयत्नशील रहने की ओर अधिक झुकाव दिखायी देने लगा है। ध्वनिमुद्रण तथा आकाशवाणीपर संगीताविष्कार के इन प्रयत्नों को श्राव्यस्वरूप प्राप्त हो जाता है।

यहाँ लय के विभागों तथा अकृतिबंधों की ओर ध्यान आकर्षित करने के प्रयत्न रहते हैं। आघात को स्पष्ट करने की ओर झुकाव रहता है। चित्रपट तथा दूरचित्रवाणी में इसका स्थान हस्तसंचालन लेता है। सांगीतिक उद्देश्य तथा संकल्पों को अनिवार्य संगत हस्तसंचलन तथा अभिनय के द्वारा होती दिखायी देती है। शरीर को ज्यादा झटके देना, हालचलों को खंडित करना, हाथ उंगलीयों को नृत्यानुकुल ढंग से हिलाना आदि बातें स्पष्ट रूप से कैमरा के भान का परिणाम है।

प्रत्यक्ष कार्यक्रम की तुलना में देखें तो ध्वनीमुद्रीत अथवा प्रक्षेपित (आकाशवाणी आदि से) संगीत को एक विशेष प्रकार की अंतिमता होती है। इस अंतिमता के दो पहल होते हैं। एक तो आविष्कार के लिये उपलब्ध समय सीमित होने से कलाकार को वही पेश करना पड़ता है जो उसकी कला में उत्तम हो तथा उत्तम होने के कारण ही ग्रहण किया जाता हो। ऐसे करने से व चूके तो वह उसी भाग को उसी कार्यक्रम में फिर कभी अथवा फिरसे प्रयत्न करके प्रस्तुत नहीं कर सकता। फिर भी वह ऐसा करने लगे तो संकल्पित आविष्कारों मे से अन्य किसी हिस्से को अथवा दूसरे अंग को छोडना अनिवार्य हो जाता है। उसके विपरीत प्रत्यक्ष कार्यक्रम मे भुले गये, छूटे गये हिस्से को बिना किसी अन्य अंग को छोडे, उसे दुरुस्त करना हो तो वह कर सकता है। क्यों कि उस पर घडी के बंधन नहीं रहते। अब नहीं तो कभी नहीं ऐसी बात नहीं रहती। माध्यम संबंध आविष्कार में भूली बात को भूल जाना ही अच्छा रहता है क्योंकि ऐन मौके पर उसमें अंतर्गत परिवर्तन नहीं किये जा सकते। शायद पूछा जा सकता है कि पुनर्मुद्रण का क्या? पुनर्मुद्रण से इस अंतिमता को निरूपद्रव बनाया जा सकता है। परंतु अगर इस बात को ध्यान में लें कि पुनर्मुद्रण प्रायः संपूर्ण आविष्कार का होता है, तो ध्यान में आ जायेगा कि माध्यमसबंद्ध आविष्कार की अंतिमता अनिवार्य रहती है।

माध्यम-संबद्ध आविष्कार की अंतिमता का और एक पहलू हैं। सुननेवाले, ग्रहण करनेवाले की ओर से भी अंतिमता प्रतीत होती है। सारे ध्वनिमुद्रण को फिरसे बजा सकता और ध्वनिमुद्रित संगीत में किसी प्रकार का परिवर्तन करने में सुनने वाले का असमर्थ रहना इस दृष्टी से भी माध्यम-संबद्ध आविष्कार अंतिम बन जाता है। प्रत्यक्ष कार्यक्रम में कलाकार और श्रोता में लेन-देन चलता है। श्रोता का कलाकार पर प्रभाव रहता है। इतना ही नहीं श्रोता के द्वारा कलाकार नियंत्रित भी हो जाता है। कुछ भी हो, श्रोता की दृष्टी से देखा जाय, तो अविष्कार में सहभागी होना प्रत्यक्ष कार्यक्रम में सहज संभाव्य रहता है। माध्यम-संबद्ध आविष्कार एक तरफा व्यवहार होता है। भारतीय संगीत की भारतीय बैठक और दाद देना आदि बातों को देखा जाय तो ध्यान में आ जायेगा कि माध्यम-संबद्ध संगीताविष्कार कुछ लंगडा सा हो जाता है। भारतीय संगीत के सदर्भ में श्रोतृवृंद केवल ग्राहक नहीं होता। वह अल्प मात्रा में क्यों न हो प्रत्यक्ष में कलाकार का सहयोगी रहता है।

माध्यम-संबद्ध अविष्कार की जो विशेषता ऊपर बतायी है, उन सभी का एक संकुल परिणाम यह होता है कि प्रत्यक्ष अविष्कार मे जो दो आवस्थाएँ बडे आकर्षक ढंग से अभिन्न रहती है वे अलग अलग बन जाती है। उनमें बडी खाई निर्माण हो जाती है। रचना करना और उसपर अमल करना येही वे दो अवस्थाएँ है। किसी भी माध्यम-संबद्ध आविष्कार में प्रयोगकर्तापर कई दबाव रचते है। नियत समय में अपनी उत्तमोत्तम चीजों की अपरिवर्तनीय ग्रहणक्रिया के सामने, श्रोता दर्शकों के सामने रखने पड़ते है। तत्कालस्फूर्त रचना करना अथवा उत्स्फूर्त कल्पनाओं को आजमा लेना आदि साहसपूर्ण बातें वह कर नहीं सकता। इसका परिणाम यह

हो जाता है कि क्या गाना है अथवा बजाना है इसका निर्णय तफसील में उतरकर, करने की ओर वह प्रवृत्त होता है। प्रस्तुतीकरण की प्रणालि घटकों को दिया जाने वाला कम-अधिक महत्त्व आदि बातों की जन्मपत्रिका बहुत पहले और स्पष्ट रूप की बनायी जाती है। इतनी सारी बातें होने के पश्चात इतने सारे निर्णय करने के पश्चात शेष रह जाती है केवल ईमानदारी, सफाई और कार्यक्षमता के साथ अमल करने की बात। इस प्रकार कहा जा सकता है कि हम तत्कालस्फूर्त संगीत से पूर्वरचित संगीत की ओर मुडने लगे है। हम बिना बैठक जमाये कार्यक्रम देने लगे है। (सच्चे अर्थों मे परफार्मन्स कौन सा और रिसायटल कौन सा आदि बातों की चर्चा मैने अन्यत्र की हैं।) आविष्कार में संगीत-कृती का संकल्पन और उनका प्रयोग ये दोनो अवस्थाएँ पूर्णरूप से भिन्न होता है। प्रत्यक्ष कार्यक्रम में ऐसा नहीं होता। साधारण तौरपर हमारी कलाकृति का 'संविधान' अलिखित होता है जो आसानी से बदला नहीं जाता ऐसा कलाकार का विश्वास होता है। माध्यम-संबद्ध आविष्कार में इस सांत्वना का पूर्णरूप से अभाव रहता है।

माध्यम-संबद्ध आविष्कार की और एक विशेषता यह होती है कि संगीताविष्कार के जो कुल चेतकसमूह उपलब्ध होते हैं उनमें से कुछ चुनकर उन्हींपर ग्राहक के ध्यान को केंद्रित करने में माध्यमों को सफलता मिलती है। दृश्य, स्पर्श्य गतिसंबद्ध, श्राव्य आदि कई प्रकार के चेतक किसी भी संगीतविष्कार में एक ही समय कार्यरत होते हैं। और इन सब का ग्रहण हम अपनी अभिरूचि के अनुसार पसंदगी के अनुसार करते है। माध्यम पहले ही इस बात का निर्णय किये रहते है कि कौनसे चेतक हम में कार्यरत हों। ध्वनिमुद्रण, आकाशवाणी जैसे माध्यमों में हम दृश्य चेतकों से वंचित रह जाते हैं। मुद्दा यह कि ग्राहक इस बात का निर्णय नहीं कर सकता कि क्या लें। रेडिओ, टी.व्ही. में टोन-कंट्रोल जैसी सुविधा करने की इच्छा ही यह दर्शाती है की माध्यम ऐसी बातों में ग्राहक से स्वतंत्रता को छीन लेता है।

संगीताविष्कार के स्वाभाविक गुणों में माध्यम के कारण किस प्रकार सर्वांग परिवर्तन होता है इसका अनुभव कार्यक्रम में ग्राहक के उलझाव से मिलता है। प्रत्यक्ष आविष्कार का अर्थ है कि मान्य और स्वीकारार्ह मार्ग से ग्राहक का होने वाला उलझाव। पसंदगी कैसे, कब और कितनी मात्रा में प्रकट करें यहाँ से लेकर कैसे बैठे, किस प्रकार बोले यहां तक वह संकेतों मे बद्ध रहता है। किसी धार्मिक विधी में सहभागी होने वाले व्यक्ति की तरह उसकी मानसिक शारीरिक तैयारी होना आवश्यक रहता है। माध्यम-संबद्ध आविष्कार ने इस उलझाव को हटा दिया है। धर्मविधी के स्थानपर संगीताविष्कार का भी कर्मकांड हो गया है। समय जानने के लिए, दैनंदिन कार्य को पार्श्वसंगीत के तौरपर अब संगीत का उपयोग हो सकता है। सारा दिन आसपास संगीत के गरजते रहते भी ग्राहक पर किसी प्रकार का संस्कार न होने का चमत्कार मध्ययुग में ही हो सकता है।

तिसपर भी ग्राहक माध्यम के द्वारा ही क्यों न हो, संगीत ग्रहण करने लगे, तो जल्दबाजी करने से उसकी ग्रहण क्रिया में कलाविष्कार के उत्कर्षबिंदु तक पहुचाने के खींचाव का ग्रहण लग जाता है। प्रत्यक्ष आविष्कार में कलाकार उत्कर्षबिंदू की ओर धीरे धीरे, क्रम क्रम से सोढी-दर-सोढी पहुंचाता है और उससे उलझा हुआ ग्राहक भी उसी प्रकार, आविष्कार के साथ ही बढता जाता है। माध्यम-संबद्ध आविष्कार में समय को पूर्वनिश्चित और अपरिवर्तनीय सीमा के कारण कलाकार अपने संभाव्य आविष्कार का गणिती संपादन निश्चित रूप से करना चाहता है। अमुक समय, अमुक जगह, अमुक तिहाई, अमुक तान, और अंत में इस प्रकार की हरकत आदि बातों का पूर्व निश्चय कर रखता है। इस प्रकार की ठंडी कार्यक्षमता से बंधे हुए आविष्कार तथा परिणाम का ढंग से सामने बैठे हुए उत्कर्ष बिंदु का चस्का लगे श्रोता को इसकी आदत हो जाती है। आविष्कार की हर एक कला का ग्रहण करने के लिए आवश्यक सतर्क और शांत मनोवृति उसके पास रहती नहीं। वह बाह्य संकेतों की खोज में रहने लगता है। बढ़ता लाभ, उसका युक्त उपयोग, खींचातानी करके लाये तिय्ये, कृत्रिम सवाल-जवाब आदि की पहचान उसे आसानी से हो जाती है और इन्हीं बातोंपर वह संतुष्ट रहने लगता है। फिर कलाकार भी संगीत सिद्धी के बजाय उसकी परिणामकारता पर बल देने लगते हैं। फिर एसा लगता है की लेने वाला और देने वाला भी कलाकृति की ओर इस दृष्टि से देखते हैं, कि मानो वह कृत्रिमता से जल्दी पकाया जाने वाला फल ही हो।

इसमें और एक बात यह कि माध्यम जनता संपर्क के होते हैं। अतः जनता की आवश्यकताओं, आकांक्षाओं अभिरुचिओं का प्रतिबिंब उनके कार्यो में किसी न किसी प्रकार दिखायी देना अटल है। ग्राहक की ओर से किसी न किसी प्रकार फीड-बैक आता रहता है। और माध्यमों के अवतारों पर इसका बडा असर पड जाता है। विशेषकर विकसनशील राष्ट्रों में शैक्षणिक स्तर को सर्वत्र समान करने के लिए माध्यमों का उपयोग करने की प्रवृति रहती है। चुने हुए, जानकार लोगों के लिए कार्यक्रम प्रस्तुत करने की घटना जो कभी कभी हो जाती है अथवा संयोगवश हो जाती है वह इस पार्श्वभूमि पर। कार्यक्रम के द्वारा निश्चित प्रतिसादों का आवाहन करना, सांस्कृतिक ढाँचों का ठोस उपयोग करते रहना आदि बाते नियमित रूप से होती रहती है। सांगीतिक कार्यक्रम के संदर्भ में यह क्रिया अनेक ढंगो से होती रहती है। गायक वादक के 'कैमेरा योग्य' होने पर बल देना निवेदन तथा टीका टिपणी में भव्य परंपरा, प्रतिभासंपन्नों का असाधारणत्व और चिकने चुपडे भावावेश से मर कर गाने का वर्णन करना आदि बाते इस संदर्भ में नमूने के तौरपर प्रस्तुत की जा सकती है। सांस्कृतिक जनशासन की भ्रमपूर्ण, राजनीतिक प्रेरणा से प्रभावित होने वाली कल्पना और विचक्षण सौंदर्य कल्पनाओं से प्रेरित सांस्कृतिक विवेक में विकसनशील राष्ट्रों में हमेशा संघर्ष रहता है। इसी लिए माध्यम के द्वारा प्रस्तुत किये जाने वाले कार्यक्रम हमेशा संमिश्र गुणों के रहते है। मेरे विचारों में, विकसनशील देशों मे माध्यमों का यही बर्ताव रहेगा इस बात का स्वीकार कर चुप रहने में ही भलाई है। अन्यथा एक बात माननी होगी कि समाज हमेशा सांस्कृतिक दृष्टि से कई स्तरों का रहेगा इसका स्वीकार करने और उसका प्रतिबिंब कार्यक्रम में दिखाई देने की घटना को पूँजीवाद न मानना।

जिन कार्यक्रमों से फीड-बैक मिले उन्ही की ओर झुकाव रहना माध्यमों की प्रवृति रहती है। इसका परिणाम उसके तांत्रिक पहलुओं पर भी हुए बिना नहीं रहता। फिर श्रवण संबद्ध माध्यम स्थूल नाद तरंगों पर तथा दृक्-संबद्ध माध्यम दृश्य भाग पर बल देने लगते हैं। किसीको भी मधुर लगने वाली आवाज की ओर श्रवण संबद्ध माध्यम आकर्षित होने लगते हैं। ध्वनिमुद्रक के स्तर को बनाये रखना महत्त्वपूर्ण हो जाता है। सांगीतिक आवश्यकताओं का विचार किये बिना साधारण तौर पर यंत्र सामग्री का उपयोग किया जाता है। लक्ष्य रहता है ध्वनिमुद्रण करने का, न कि संगीत मुद्रण करने का। दूरदर्शन में भी कोई खास निराली बात नहीं रहती। चिकने-चुपडे वही चेहरे, हावभाव, अभिनय और हरकतें आदि में दिखायी देने वाले फिल्मीपन का आधा श्रेय जाता है सांस्कृतिक जनताराज की आवाज के प्रभाव को ओर उसीको और फीड-बैक मानने वाले माध्यम-संबद्धता को।

तांत्रिक पहलुओं का प्रभाव प्रत्यक्ष ध्वनिमुद्रण की प्रणालियों पर भी पडता आया है। जब से ध्वनिमुद्रण की खोज लगी है तब से ध्वनिमुद्रित होने वाले वाद्य और आवाज में किस प्रकार संतुलन रखा जाय इसका भान सूक्ष्म रूप से बदलता गया है। सभी घटकध्वनि स्पष्ट और स्वतंत्र रूप से सुनायी दें - इस हेतु हर एक वाद्य को अलग ध्वनिग्राहक देना यह हो गयी पहिली सिढी। फिर गाये जाने वाले घटको तथा बजने वाले घटकों को अलग अलग बिठाया जाने लगा। इस से संगीत-प्रयोग की एक संघ बात-कृति करने वाले एकक (युनिट) विघटित हो जाते हैं। इसका परिणाम रचनाओं में दिखायी देता है। ध्वनिमुद्रण को अच्छा बनाने वाले वाद्य, ऐसी ही आवाज और ऐसी ही रचनाएँ, अधिक और ज्यादा चमकदार वाद्यरचना में प्रयुक्त किये जाते हैं। ऐसे नादरंग दिलाने वाले वाद्यों में इलेक्ट्रोनिक वाद्यों का स्थान ऊपर का होने से उनका उपयोग बढ़ती मात्रा में रहता है। एक तरह से स्थूल हार्मनी और पार्ट रायटिंग (विभिन्न घटकों के लिए संगीतरचना में विशिष्ट भाग की रचना स्वतंत्र रूप से करना) का प्रयोग होने ही लगा है। हमारे राग आगे चलकर बने रहेंगे ऐसा मुझे नहीं लगता। इसमें संदेह नहीं कि राग और स्वतंत्र गायन वादन में उनका विस्तार करने की परंपरा इन दोनों पर माध्यमों का जोरदार दबाव रहेगा। अधिकाधिक वाद्य, वाद्यसंगीत और हार्मनी की हम आयात करते जायेंगे और माध्यमों के कारण यह क्रिया शीघ्र गती से होती जायेगी।

आसानी से ध्यान में न आने वाला माध्यमसंबद्ध लाभ यह कि दृश्य और श्राव्य अनुभवों का तुल्यशक्तित्व परखना उनके कारण आसान होने लगा है। आज अन्य कलाओं के साथ ही संगीत का जो प्रवास है वह एक कुतूहल का विषय बन गया है। और अगर

माध्यमों के व्दारा उपलब्ध करा दिये मुद्रण, रक्षण और इच्छानुसार सहाविष्कार (सिन्क्रोनायझेशन) आदि बातों की सुविधा न होती तो यह यात्रा संभव न हो पाती। माध्यमों का समर्थन न हो तो यह कहने में कोई अर्थ नहीं कि दृश्य-श्राव्य हाथों में हाथ डालकर विचरण करें तो शिक्षा आसान होगी। संगीत शिक्षा में भी इसका उपयोग तथा परिणाम अवश्य होकर रहेगा। संगीतोपचार और संगीत का शैक्षणिक उपयोग इन क्षेत्रों में भी माध्यमों के कारण आश्चर्यो का जन्म होगा इसमें संदेह नहीं।

माध्यमों के कारण हमारा संगीत जरा जनानी हो गया है। ध्वनीमुद्रण सामग्री की संवेदनशीलता और 'क्लोज अप' जैसे तांत्रिक अविष्कारों के कारण जोशीले और मर्दानी आविष्कारों की अवनति होने जा रही है। आवाज में सूक्ष्म भेद कर संगीतात्म आशय की सूक्ष्मता अब पेश की जाती है। नादपूर्ण परंतु अधिक उलझनभरी नाद कृतियों को अब गायक वादक दोनों भी महत्त्व देने लगे हैं। गायको में मंद्र आलापों की मात्रा बढ़ने लगी है और वाद्यवृंद में मींड जैसे अलंकारी का प्रयोग प्रचुरता के साथ किया दिखायी देने लगा है। यह तो माध्यमों के पुण्य का फल है। विशेषकर तंतुवाद्यों को प्राप्त प्रतिष्ठा उनकी बढ़ी हुई संभाव्यता और क्षमता इन सारी बातों का श्रेय माध्यमों को है।

भारतीय संगीत के संदर्भ में माध्यम का जो उपरोक्त विश्लेषण किया वह और भी विस्तार के साथ किया जा सकता है। परंतु संगीतनिर्माण, प्रयोग, ग्रहण, और शिक्षा इन चार पहलूओं को सामने रखकर किया हुआ यह विचार समूल गलत बन जाने की संभवना बहुत कम है। यद्यपि इन चार पहलूओं के माध्यमों के साथ रहने वाले संबंधों का अलग अलग रुप से विचार करना आदर्श लगे तो भी भारतीय संदर्भ मे यह उचित नहीं लगता क्योंकि विकसनशील देशो में माध्यमों के प्रयोग की प्रेरणाएं अधिक संमिश्र होती हैं उन प्रेरणाओं के लिए उपलब्ध आविष्कार मार्गों का प्रयोग अलग अलग ढंग से नहीं होता। इसलिए उपरोक्त हर एक पहलू का विचार स्वतंत्र रूप से करना बडी कठिन बात है।

इस संमिश्र दृष्टिकोन के साथ ही उपरोक्त सारे विश्लेषण में एक तरह की तटस्थता है। यह भी अनिवार्य है। क्योंकि माध्यम बहुत दिनों के पहले सयाने नहीं हो गये है। और भारत में तो उनमें से कुछ माध्यमों के चरण स्थिर भी नहीं हो पाये हैं। ऐसी अवस्था में माध्यमों की ओर से अथवा उनके विरुद्ध किसी प्रकार सूर लगाना न्याय्य न होता। इसका मतलब यह नहीं कि भारत के माध्यमों के कार्य का परीक्षण भी नहीं कर सकते। भारतीय संगीत के संदर्भ में, भारतीय जनता संपर्क माध्यमों के शासन का संक्षिप्त लेखा, जोखा प्रस्तुत करना आवश्यक है।

ध्वनिमुद्रण :

१) ध्वनिमुद्रिका और ध्वनिपट्टिकापर जो ध्वनिमुद्रण होता है उसने, समाज के विविध स्तरों में संगीत को 'संगीत' के नाम से परिचित कराने की दृष्टि से बडा महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। संगीत के नाते कुछ श्राव्य अनुभवों को पहचानने का मतलब यहा है कि सुनने वाले के मन में कुछ निश्चित ढाँचे निर्माण करना। अन्यथा श्राव्य संवेदना के नाते जिनका स्वीकार किया गया हो एसे अनुभवों की संगीत के नाते नोंध करा लेने का अर्थ है नये अनुभवों की सांगीतिक संगति लगाना।

२) संगीत को फिरसे मनचाहि मंजिल से बजा सकना, जिससे संगीत के आकृतिबंधों का रसग्रहण और आकृतिबंधों का विश्लेषण कर कलाकृती की समीक्षा करना - ये दो बातें संभवनीय हो गयी हैं। इन प्रणालियों का भी संगीत ग्रहण तथा समीक्षण हमारे यहाँ ठीक ढंग से नहीं होता। इस के लिए समीक्षाकारों के आलस्य के अतिरिक्त और कुछ दिखायी नहीं देता।

३) हमारे ध्वनिमुद्रण तथा ध्वनिमुद्रण के व्यवसाय को शैक्षणिक और सांस्कृतिक उत्तरदायित्व का भान नहीं है। असली लोकसंगीत जिसकी तर्जे न बनी हो, संगीतकार के बहार के दिनों की मुलाकातें तथा सोदाहरण चर्चा, सांगीतिक दृष्टि से महत्त्व रखने

वाला परंतु व्यापार की दृष्टि से कम महत्त्व का खानदानी संगीत आदि बातों को ध्वनिमुद्रिका आदि में स्थान नहीं मिलता। चलन के सिक्कों की तरह संगीत जमा करके रख दिया जाता है और प्रसृत भी किया जाता है। इन बातों का मान होने का ही अर्थ है ऐतिहासिक दृष्टिकोण का न होना। आकाशवाणी, विद्यापीठ, अकादमी आदि संस्थाएँ भी, जिनका दृष्टिकोन व्यापारी न हो, आशास्थान नहीं बनती। आज भी एक व्यक्ति के व्दारा संचालित संस्था तथा व्यक्तिगत स्तरपर शौक होने से प्रयत्नशील व्यक्ति के पास ही ध्वनिमुद्रण संग्रह पाया जाता है तथा उपलब्ध होता है। यह तथ्य बहुत कुछ बता जाता है, दुखदायक भी है।

आकाशवाणी :

आकाशवाणी ने, जो सभी माध्यमों में शायद ज्यादा प्रभावशाली सिद्ध हो, सांगीतिक साक्षरता का प्रमाण बढाने तथा जनसाधारण की बुद्धिमत्ता का गुणांक ऊपर उठाने की दृष्टी से बडा ही महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। मुख्यतया आकाशवाणी के कारण किसी न किसी प्रकार के संगीत का प्रचलन गृहित माना जा सकता है। आकाशवाणी के केंद्रों का फैला हुआ जाल, रेडिओसेट की बढती हुई संख्या, उसकी सरकारी ठेकेदारी, उसके द्वारा निश्चित की गयी एक परंपरा आदि के कारण भविष्य में भी ठोस कार्य होने की संभावना है।

२) परंतु आकशवाणी ने अपनी आदर्श विषयों का विचार प्रणालि में तथा कार्यपद्धति में गतिशीलता का जो अभाव दिखाया है वह सहज ही ध्यान में आ जाता है। अब भी अपने बोध वाक्य 'बहुजन हिताय बहुजन सुखाय' के संकुचित तथा शब्दशः अर्थ को चिपके रहकर ही उसका कार्य चल रहा है। इस संदर्भ में ऐसा लगता है कि उसके नीतिविषयक निर्णय अपरिपक्व से हैं। जैसे जैसे समय बीतता जाता है, वैसे वैसे समाज के सांस्कृतिक स्तर संख्या तथा गुणों से अधिक विविध होते जाते हैं। उनकी सांगीतिक आवश्यकताएँ भी अधिकाधिक विविध होती जाती है। आकशवाणी को इन सभी के लिए पर्याप्त बनना है इस बात को भूल जाने से काम नहीं चलेगा। सांस्कृतिक दृष्टि से समाज में सुरूचिसंपन्न तथा साधारण अभिरूचि वाले लोग हमेशा रहेंगे इस बात को दृष्टि से रखें तो भी व्यवहार में रहेंगे। शिक्षा आदि के कारण आज जिनकी अभिरूचि साधारण हो ऐसे लोग आगे चलकर अभिरूचिसंपन्न होंगे भी। परंतु तब फिर भी कुछ लोग साधारण अभिरूचि के स्तर के रहेंगे। जगतंत्र का अर्थ सांस्कृतिक अभिरुची के स्तर को एक मानना अथवा करना नहीं! बल्कि, जनतंत्र का मतलब है सांगीतिक दृष्टि से साक्षर समाज के 'साक्षर' तथा 'साक्षर और अभिरूचिसंपन्न' स्तरों में मुक्त आदान प्रदान के योग्य अवस्था निर्माण करना। कार्यक्रमों का आयोजन तथा उसके प्रस्तुतीकरण में आकाशवाणी को चाहिए की वह इस सत्य के आकलन को सिद्ध करें। इस भ्रम में रहना आकाशवाणी के लिए बडा घातक सिद्ध होगा कि अपने बोधवाक्य के जनतंत्रवादी अंध अर्थ से चिपके रहकर सांस्कृतिक दृष्टि से गतिशील भूमिका को निभाया जा सकेगा।

३) अपनी मुलभूत सैद्धांतिक भूमिका अंध अर्थ करने से भारत का ध्वनीक्षेपण 'चंक-ब्राडकास्टिंग' निश्चित काल के रिक्त स्थानों को भर देने वाले आंदोलन जैसा हो गया है। कलाकार विशेष की क्षमता सांगीतिक आवश्यकता और संभाव्यता आदि का संकलीत विचार फिर समय देखने के बजाय समय के खंड, कलाकारों की श्रेणीयां आदि बातें निश्चित कर संगीत उसमें भर दिया जाता है। फिर ध्वनीमुद्रण तथा कार्यक्रम प्रस्तुत करने के संदर्भ में बाजार भाव और ख्याल गायन हवामान और सितार वादन... सभी को समान न्याय मिल जाता है। आकाशवाणी के ध्वनिमुद्रण के उपकरणों के पीछे बैठे हुए लोगों को 'प्रोग्राम सेन्स' शायद ही होता है। और दुखदायक बात यह है कि इसका उन्हें खेद भी नहीं होता।

४) भारत के अन्य माध्यमों की तरह आकाशवाणी ने भी संसार के अन्य भागों में जो माध्यम संशोधन चल रहा है, उसमें दखल देना टाल दिया हैं। आज की अवस्था देखकर ऐसा लगता है की आकाशवाणी अपनी निति और कार्यक्रम को पुनर्रचना तथा पुनर्विचार करने में अप्रसन्न है। माध्यमों ने हमारे मानस में कैसे घर कर लिया है, उनके परिणाम कैसे दूरगामी होते है इसका भान होने से

माध्यमों का स्वरूप, उनकी कार्य प्रणालि, उनके परिणाम, उनका लचीलापन आदि से संवाद साहित्य विपुल मात्रा में लिखा जा रहा है। उसपर चर्चा हो रही है। इस साहित्य में दखल देकर हम माध्यमों को कामपर लगा सकेंगे। आजकल माध्यम हम से काम करा लेते है।

चित्रपट :

जहाँ तक संगीत के प्रसार की बात है हम कह सकते हैं कि भारत में शायद चित्रपट ने आकाशवाणी की तुलना में चित्रपट ने संगीत का अधिक प्रसार किया है। सफाईदार ध्वनिमुद्रण, मधुर तथा लचीली आवाज काफी नादरंग और चित्रपट की घटना का प्राप्त संपुट आदि बातों ने भारतीयों के मन में अच्छी तरह जडे जमा दी हैं। बडे निश्चित रूप से कमाये जाने वाले स्वरों की अभिरूची की अपेक्षा चित्रपट (सिने) संगीत ने अधिक जन्मजात लय को महत्त्व दिया है। दूसरी बुद्धिमत्ता की बात यह कि चित्रपटों ने श्रोताओं को छोटे डोसों के द्वारा संगीत पिलाने का मार्ग अपनाया है। विविधता की दृष्टि से तो चित्रपट बहुत आगे बढ गये है। हमारा चित्रपट संगीत छिप चोरी से लेकर खुली उधारी अथवा अनुकरणतक सभी रास्तोंपर कदम बढाये है। यह खुला सत्य है कि चित्रपट संगीत जनसाधारणतक पहुंच गया है शेष संगीत पहुँचने जा रहा है।

२) परंतु चित्रपट ने सांगीतिक आशय की अपेक्षा तांत्रिक पहलू की ओर अधिक ध्यान दिया है। चित्रपट को चाहिए कि तैयार संगीत ढाँचो का प्रयोग करे और अधिकाधिक परिणामकारी 'खपत' बढाने की ओर भी ध्यान दे इस ढंग को बदल दे। संगीत की ओर गंभीरता के साथ देखने वालों को भी वे अपनी ओर आकर्षित करना चाहिए। अधिक सुरूचिसंपन्नों की आवश्यकताएँ लक्षणीय होती है इस बात को पहचानना चाहिए। आर्ट फिल्म्स् का युग क्यों प्रारंभ हुआ इसका अर्थ लगाया जाना चाहिये। खर्च और खपत ही की भाषा को समझने वाले हालीवुड का दिवाला क्यों निकल गया और अभिरूची में कैसे परिवर्तन आया इस बात की ओर सावधानी से देखने में उनका भी हर तरह से लाभ है।

३) चित्रपट - व्यवसाय ने भी माध्यम-संशोधन की ओर ध्यान नहीं दिया है। अपनी प्रचंड कमाई और लेन-देन का अल्पांश संशोधन के लिए फिर से उँडेलने की आवश्यकता को समझ लेना चाहिए। इससे यह समझना आसान होगा कि आगे का प्रवास कैसा हो और वह ऐसा ही क्यों हो।

दूरचित्रवाणी :

दूरचित्रवाणी अभी शैशवावस्था में है। अत: उसके भारतीय स्वरूप के संबंध में इतने जल्दी कोई फैसला करना उचित नहीं होगा। यहाँपर इतना ही कहना काफी होगा कि माध्यम-संशोधन का अभाव तथा कार्यक्रम के नियोजन और प्रस्तुत करने में आकाशवाणी को लगी छाप इन दो बातों का नष्ट होना आवश्यक है।

माध्यम हैं सभी ओर से संगीतपर होने वाला आक्रमण और संगीत को उपलब्ध रहने वाला शास्त्रागार भी। परंतु विकसनशील अवस्था में रहने वाले देश की लाभ-हानी को हमें उठाना पडता है। दूसरों की भूलों को टालने का मौका हमें मिलता है, परंतु इस मौके से लाभ उठाने के लिए आवश्यक साधनसामग्री हमें मिलती ही हो ऐसी बात नहीं। परंतु माध्यम और हम में रहने वाले रिश्ते का सुबुद्ध तथा गहरा ज्ञान रखें तो बडा ही अच्छा होगा। संगीत की खोज के एक साधन के नाते संगोतकारों को माध्यमों की और देखना चाहिए। माध्यम की और से यह दिखायी देना चाहिए कि संगीत एक विशेषतापूर्ण तथा सूक्ष्मता के साथ ध्यान देने योग्य आविष्कार मार्ग है। और यह कोई कठिन कार्य नहीं है।